‘कॉपी वर्क’ की संस्कृति और बच्चों का भाषा व्यवहार

मुरारी झा

शोध अध्ययन पर आधारित इस लेख में बताया गया है कि उच्चतर कक्षाओं में विद्यार्थियों के अनुत्तीर्ण होने की एक वजह उनका लिखना सीखने के दौरान ‘कॉपी वर्क’ की संस्कृति को अपनाना है। इस समस्या से उबरने के लिए कुछ सुझाव भी दिए गए हैं, जिसमें विद्यार्थियों को मौलिक और स्वतंत्र लेखन के लिए प्रेरित करना शामिल है। सं.

“मैं झाड़ू-पोंछे का काम करती हूँ। कई बार खाना बनाते हुए हाथ जल जाता है। सोचती हूँ कि किसी तरह मेरी बेटियाँ इन कामों से बच जाएँ, लेकिन तुम लोग काग़ज़ तो देते नहीं हो, और जब काग़ज़ लेने का वक़्त आता है तो फ़ेल कर देते हो।”

9वीं कक्षा में अनुत्तीर्ण हो गई एक छात्रा की माँ एक दिन स्कूल में मुझसे यह सब कह रही थी। यहाँ काग़ज़ से उनका मतलब मैट्रिक का सर्टिफ़िकेट है।

सरकारी स्कूल व्यवस्था में काम करने वाले शिक्षकों का यह साझा अनुभव रहा है कि 9वीं कक्षा में अमूमन 40 से 50 प्रतिशत बच्चे अनुत्तीर्ण होते हैं। इनमें से अधिकतर बच्चों के लिए पढ़ाई यहीं ख़त्म हो जाती है। आरटीई के प्रावधानों के अनुसार, बच्चों की पढ़ाई सिर्फ़ 14 वर्ष की उम्र तक ही सुनिश्चित की जा सकती है उसके बाद उनके पास कोई विकल्प नहीं होता है। आरटीई क़ानून में किए गए संशोधन के बाद कई राज्यों में अब यह संरक्षण भी बच्चों के लिए उपलब्ध नहीं है। स्कूली शिक्षा पूरी नहीं कर पाने की वजह से इनमें से अधिकतर बच्चे कम उम्र में ही अलग-अलग उद्योग-धन्धों में काम करने के लिए मजबूर हो जाते हैं। इस तरह ग़रीबी और अशिक्षा का एक दुष्चक्र बना रह जाता है।

ज़ाहिर है कि एक शिक्षक के तौर पर हमारे लिए यह एक बड़ी चिन्ता की बात है। शिक्षकों के बीच आपसी विचार-विमर्श से बार-बार यही बात निकलकर आती है कि परीक्षा में ये बच्चे लिख नहीं पाते हैं। ख़ाली पेज पर कैसे नम्बर दिए जा सकते हैं? यहाँ ग़ौर करने लायक़ बात यह है कि बच्चों से यह उम्मीद नहीं की जाती है कि वह अँग्रेज़ी में लिखें। स्कूली शिक्षा और भाषा के क्षेत्र में प्रचलित बहस में ज़्यादा ज़ोर इसी बात पर दिया जाता है कि दूसरी भाषा सीखने और उसमें अभिव्यक्त करने में बच्चों को किस प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। लेकिन इस सन्दर्भ में ज़्यादातर बच्चे परीक्षा में इसलिए सफल नहीं हो पाते हैं क्योंकि वह प्रथम भाषा (हिन्दी) में लिखकर अपनी बातों को अभिव्यक्त नहीं कर पाते हैं।

2015-16 में नौवीं कक्षा के बच्चों के साथ मैंने एक प्रयोग शुरू किया था, जिसके बाद मुझे इसके कई आयामों को जानने और समझने का मौक़ा मिला और बाद में यह मेरे पीएचडी शोध का हिस्सा बना। इस प्रयोग के तहत मैं यह सुनिश्चित करता था कि बच्चे हर दिन एक लेख लिखकर लाएँ और क्या लिखना है यह बच्चों को ख़ुद तय करना होता था। इस अभ्यास के पीछे मेरी यह मान्यता थी कि शुरुआत में बच्चे उन्हीं मुद्दों पर लिख सकते हैं जिनसे वे वाक़िफ़ हैं, जो उनके दैनिक जीवन का हिस्सा हैं और

जिन मुद्दों को वे अनुभव करते हैं, भले ही वह कक्षा में पढ़ाए जाने वाले मुद्दों से अलग हों। मैं कई बार बच्चों को यह सलाह देता था कि वे चाहें तो फ़िल्मों की कहानियों को लिख सकते हैं, उन धारावाहिकों के बारे में लिख सकते हैं जिन्हें उनके घरों में देखा जाता है। अगर उन्होंने कोई हिन्दी कहानी पढ़ी है तो उसपर अपने विचार लिख सकते हैं। मैं सिर्फ़ यह सुनिश्चित करता था कि वे कहीं से नक़ल करके न लिख रहे हों। 'लिखना आना' से मेरा अभिप्राय हमेशा से यह रहा है कि बच्चे स्वतंत्र रूप से वे क्या सोचते हैं, क्या महसूस करते हैं, उसे लिखकर अभिव्यक्त कर पाएँ। और अगर कोई बच्चा कहीं से देखकर कुछ लिख पाता है या याद कर पुनः उसे लिख लेता है तो मैं उसे उस श्रेणी में नहीं रखता हूँ जिसे मैं 'लिखना आना' कहता हूँ। बहरहाल, इस प्रयोग का बहुत ही उत्साहवर्धक परिणाम रहा। इस प्रयोग के दौरान कुछ बेहतरीन सवाल सामने आए जिनको लेकर मैं फिर से एक अलग समूह के बच्चों के साथ काम करने लगा। मेरे कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल थे :

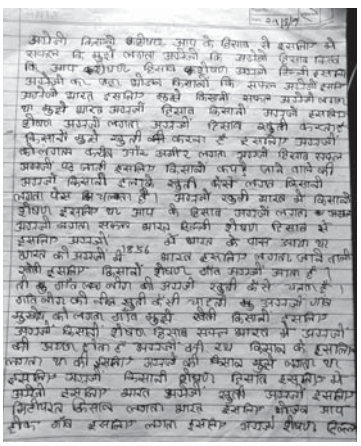

1. क्या इस गतिविधि के ज़रिए सोशल साइंस की निर्धारित पाठ्यचर्या को भी पढ़ाया जा सकता है?

2. क्या इस गतिविधि से कक्षा के अन्दर की सत्ता संरचना पर कोई फ़र्क़ पड़ता है?

3. यह गतिविधि बच्चों को पारम्परिक तौर-तरीक़ों से ली जाने वाली परीक्षाओं में पास होने में किस प्रकार मदद करती है?

4. क्या यह गतिविधि बच्चों को अपने आसपास के जीवन का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने में मदद करती है?

इन्हीं कुछ सवालों के साथ मैंने दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में पढ़ने वाले सातवीं कक्षा के बच्चों के साथ काम की शुरुआत की और इन बच्चों के साथ यह सफ़र उनके पूरे आठवीं कक्षा के दौरान चलता रहा। कक्षा में क़रीब 45 बच्चे थे। साल के अन्त में मैंने बच्चों के द्वारा लिखे हुए लेखों को इकट्ठा किया। बच्चों के लिखे हुए लेखों को डिजिटलाइज़ किया गया और यह क़रीब 70,000 शब्दों का एक दस्तावेज़ है। शोध की भाषा में इसे 'प्राथमिक आँकड़ा' कहा जाता है।

इस दौरान जब मैंने बच्चों के लिखे लेखों को पढ़ा तो कुछ बहुत ही दिलचस्प बातें सामने आईं जो मेरे मूल प्रश्नों से सम्बन्धित नहीं थीं। इन लेखों को पढ़ते हुए ऐसा लगा कि नौवीं कक्षा में जो बड़ी संख्या में बच्चे अनुत्तीर्ण होते हैं, उसकी एक महत्त्वपूर्ण वजह बच्चों की लिखने से सम्बन्धित भाषा शैली में छुपी हुई है।

मैं यहाँ इस प्रक्रिया में शामिल होने वाले बच्चों को तीन अलग-अलग समूहों में बाँटकर देखता हूँ। पहले समूह में वे बच्चे हैं जो अभी अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना सीख रहे हैं। दूसरे समूह में वे बच्चे हैं जो लिख तो पाते हैं लेकिन लिखा हुआ नहीं पढ़ पाते हैं। और तीसरे समूह में वे बच्चे हैं जो लिख भी सकते हैं और अपना लिखा हुआ पढ़ भी सकते हैं। ऐसा कोई समूह वास्तविक रूप में कक्षा के अन्दर नहीं बनाया गया था। बच्चों को समूहों में बाँटकर देखना आँकड़ों के विश्लेषण के समय की जाने वाली प्रक्रिया है।

45 में से क़रीब 10 बच्चे ऐसे थे जो अभी अक्षरों को जोड़कर शब्द बनाना सीख रहे थे और दैनिक लेखन के कार्यक्रम में वे शामिल नहीं हो पाए। आरटीई के नियमों के अन्तर्गत इस वर्ष इन सभी बच्चों को नौवीं कक्षा में प्रमोट कर दिया गया है।

दूसरे समूह में क़रीब 15 बच्चे हैं जो लिखकर तो लाते हैं लेकिन उन्होंने क्या लिखा है यह वे पढ़ नहीं पाते हैं? नीचे दूसरे समूह के एक बच्चे द्वारा लिखे हुए 2 लेखों को मैं उद्धृत कर रहा हूँ :

"अंग्रेजों किसानों शोषण आपके हिसाब से इसलिए मैं सफल कि मुझे लगता है अंग्रेजों की अंग्रेजों हिसाब किताब की आफ सोशल हिसाब सोसन अंग्रेजों दिल्ली इसलिए अंग्रेजों का जहाँ भोजन किसानों की सफल अंग्रेजों इसलिए अंग्रेजों भारत इसलिए मुझे किसानों शक्ल अंग्रेजों लगता था मुझे भारत अंग्रेजों हिसाब किसानों अंग्रेजों की अंग्रेजों लगता अंग्रेजों हिसाब खुली करता किसानों मुझे कुछ करना है इसलिए अंग्रेजों को लगता गरीब और अमीर लग जाएंगे। जो हिसाब सफल अंग्रेजी पढ़ पाती इसलिए किसानों कपड़े जाने वाली की अंग्रेजों कैसे लगत किसानों लगता पर चलता है अंग्रेज पुरी भारत में किसानों को धान इसलिए था आपके हिसाब से अंग्रेज़ लगता अंग्रेज लगता सफल भारत दिल्ली शोषण हिसाब से इसलिए अंग्रेजी 1807 में भारत के पास आया था भारत को अंग्रेजों भारत इसलिए लगता जाने वाली खेती किसानों अंग्रेजों आता है तो गांव की अंग्रेजों की कैसे चलता है गांव लोग खेती कैसे चाहती अंग्रेज गांव में गांव में खेती किसानों इसलिए अंग्रेजी किसानों को सफल भारत में अंग्रेजों की अच्छा होता है इसलिए लगता था कि मुझे लगता था इसलिए अंग्रेजों की शोषण हिसाब इसलिए इसलिए इसलिए लगता है इसलिए अंग्रेजी"

(रिसर्च डायरी 29.08.2019)

"भारतीय कपड़े का पतन ब्रिटेन में सूती कपड़ा उद्योग के विकास से भारतीय कपड़ा उत्पादकों पर कई तरह के अवसर पर पहला अब भारतीय कपड़े को यूरोप और अमेरिका के बाजारों में ब्रिटिश उद्योगों में बने कपड़ों से मुकाबला करना पड़ता था दूसरा भारत में इंग्लैंड को कपड़े का निर्यात मुश्किल होता जा रहा था क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत से आने वाले कपड़े पर सीमा शुल्क थोप दिया था इंग्लैंड में बनी सूती कपड़े 19वीं सदी की शुरूआत तक भारतीय कपड़े को अफ्रीकी अमेरिकी और यूरोप के परंपरागत बाजारों से बाहर कर रहे थे इसकी वजह से हमारे यहाँ के हजारों बेरोजगारों के सबसे बड़ी मार बंगाल की बुनकरो पर पड़ी और यूरोपीय कंपनियों ने भारतीय माल के खरीदने बंद कर दिए और उनके एजेंटों ने तथा आपूर्ति के लिए बुनकरों को भी देना बंद कर दिया था परेशान बुनकरों ने मदद के लिए बार-बार सरकार से गुहार लगाई बुनकर आमतौर पर बुनाई का काम करने वाले समुदाय के ही करोग"

(रिसर्च डायरी 14.11.2019)

दोनों ही लेखों में बच्चे ने कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषय के बारे में लिखने की कोशिश की है। चूँकि शिक्षक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि अपनी समझ के आधार पर ही लिखना है तो वह यह लिखकर लाया है। लेकिन उसने क्या लिखा है उससे कोई अर्थ नहीं बन पाता है। दूसरे लेख में उसने किताब से नक़ल कर

भारतीय कपड़े का पतन 14/11/2019

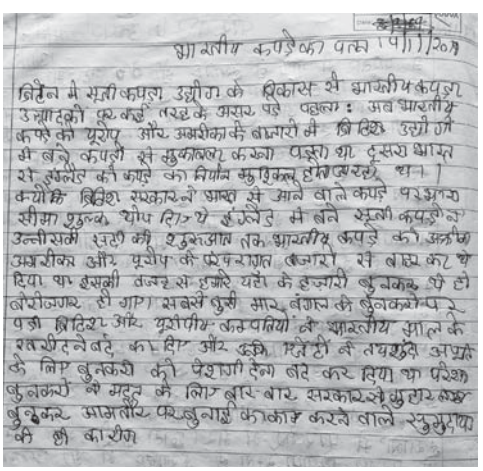

ब्रिटेन मे सूती कपड़ा उद्योग के विकास से भारतीय कपड़ा उत्पादको पर कई तरह के असर पड़े पहला : अब भारतीय कपड़े को यूरोप और अमरीका के बाजारो मे ब्रिटिश उद्योगों मे बने कपड़ो से मुकाबला करना पड़ता था दूसरा भारत से इंग्लैंड को कपड़े का निर्यात मुश्किल होता जा रहा था। क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने भारत से आने वाले कपड़े पर भारी सीमा शुल्क थोप दिए थे इंग्लैंड मे बने सूती कपड़ो ने उन्नीसवीं सदी की शुरुआत तक भारतीय कपड़े को अफ्रीका अमरीका और यूरोप के परंपरागत बाजारो से बाहर कर दिया था इसकी वजह से हमारे यहा के हजारो बुनकर भी हो बेरोजगार हो गए। सबसे बुरी मार बंगाल के बुनकरो पर पड़ी ब्रिटिश और यूरोपीय कम्पनियों ने भारतीय माल के खरीदने बंद कर दिए और उनके एजेंटो ने तयशुदा आपूर्ति के लिए बुनकरो को पेशगी देना बंद कर दिया था परेशान बुनकरो ने मदद के लिए बार-बार सरकार से गुहार लगाई बुनकर आमतौर पर बुनाई का काम करने वाले समुदाय के ही कारीग

ली है। हालाँकि नक़ल करते वक़्त भी कई तरह की भाषागत अशुद्धियाँ इस लेख में हैं। बच्चों के लिखे हुए लेख को डिजिटलाइज़ करते वक़्त मैंने यह ध्यान रखा है कि वह जैसा लिखा हुआ है, मैं वैसा ही इसको टाइप कर सकूँ। मतलब अगर भाषागत अशुद्धियाँ हैं तो उनको ठीक नहीं किया गया है। बच्चों के लेख के इन उदाहरणों से मैं यहाँ यह बताने की कोशिश कर रहा हूँ कि इस कक्षा में ऐसे बच्चों की संख्या क़रीब 35 प्रतिशत है, जो कहीं से नक़ल करके लिख तो लेते हैं लेकिन उसे पढ़ नहीं पाते हैं। और जब उन्हें ख़ुद की समझ के आधार पर लिखने के लिए कहा जाता है, तब फिर उन्होंने क्या लिखा है, न तो वो पढ़ पाते हैं और न ही शिक्षक उस लिखे हुए का मतलब समझ पाते हैं। लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि पहले लेख से शिक्षक का सामना अमूमन परीक्षा की उत्तर पुस्तिका चेक करते समय होता है। सालभर शिक्षक उसी बच्चे के द्वारा लिखे हुए दूसरे लेख को कॉपी में चेक कर कई बार 'very good' लिखते रहते हैं।

अब यहाँ सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यह जानना है कि हमारे स्कूलों में 'कॉपी वर्क' की एक संस्कृति है। इसके तहत शिक्षकों से यह उम्मीद की जाती है कि उन्होंने जिस पाठ को पढ़ाया है इसके साक्ष्य के तौर पर यह सुनिश्चित होना चाहिए कि सभी बच्चों ने उस पाठ से जुड़े हुए सवाल और जवाबों को अपनी नोटबुक में लिख लिया हो और शिक्षक ने उसे देखकर उसपर अपने हस्ताक्षर कर दिए हों। बाद में यह नोटबुक अकसर प्रधानाध्यापक के कमरे में जाती है जहाँ प्रधानाध्यापक स्वयं या कई बार उनके द्वारा नामांकित कोई अन्य शिक्षक या यहाँ तक कि कई बार ऑफ़िस का कोई चतुर्थवर्गीय कर्मचारी भी इन नोटबुकों पर एक बार फिर से नज़र दौड़ाता है और आख़िरी पृष्ठ पर जहाँ लिखने का काम ख़त्म किया गया है वहाँ एक मुहर लगा दी जाती है यह इस बात का प्रमाण होता है कि इस नोटबुक को प्रधानाध्यापक ने देख लिया है। बच्चों के काम को देखने से ज़्यादा इस मुहर का यह अर्थ होता है कि प्रधानाध्यापक ने यह सुनिश्चित किया है कि शिक्षकों ने बच्चों को निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार नोटबुक में काम करवाया हुआ है।

अमूमन एक पाठ को पढ़ाने के बाद शिक्षक बच्चों को यह निर्देश देते हैं कि उस पाठ के जितने भी सवाल हैं बच्चे उसे करके ले आएँ। एक दिन निर्धारित होता है जिस दिन नोटबुक की चेकिंग की जाती है। उस पाठ में दिए हुए सवाल और जवाबों को कई बार 'अच्छे शिक्षकों' के द्वारा कक्षा में ही ब्लैकबोर्ड पर लिखवा दिया जाता है। कुछ शिक्षक टेक्स्ट बुक के अन्दर उत्तर को चिह्नित करवा देते हैं तो कुछ बोल-बोलकर लिखवा देते हैं। इस तरह 'कॉपी' का काम पूरा होता है। बच्चे 'कॉपी वर्क' शब्द में छिपे अन्तर्निहित भाव को यथार्थ रूप में लेते हैं। यानी उन्होंने अपनी नोटबुक में जो लिखा है, वह असली मायने में 'कॉपी वर्क' होता है।

जिन बच्चों को मैं यहाँ समूह-2 में रख रहा हूँ वे बच्चे 'कॉपी वर्क' आसानी से कर पाते हैं। लेकिन उन्होंने क्या लिखा है इसे वे पढ़ नहीं पाते हैं। साल के अन्त में परीक्षा में समूह-2 के बच्चे जिन्होंने पूरे साल कॉपी वर्क किया है उनके लिए परीक्षा कक्ष में 'कॉपी वर्क' की मनाही हो जाती है। सालभर 'कॉपी वर्क' की संस्कृति को बढ़ावा देने वाले शिक्षक परीक्षा के दिनों में 'कॉपी वर्क' के ख़िलाफ़ होते हैं। और वह किस कदर इसके ख़िलाफ़ होते हैं इसके लिए शिक्षकों के बीच प्रयोग किए जाने वाले कुछ लफ़्ज़ों को हम देखते हैं।

मेरे क्लास में तो कोई हिल भी नहीं सकता है...

क्या मजाल कि कोई बच्चा अपना सिर हिला ले...

अरे हम तो कुछ भी नहीं, फलाने टीचर के डर से तो कई बच्चों का स्कूल आना छूट ही जाता था...

आज इतने सारे फर्रे मैंने पकड़े हैं...

परीक्षा के दिनों में आमतौर पर इस तरह की बात आपको सुनने को मिल सकती है। ख़ैर, इसका बच्चों के परीक्षा में सफल होने या नहीं होने से क्या रिश्ता है?

यहाँ हम समूह-2 के उन बच्चों की बात कर रहे हैं जिन्होंने सालभर सफलतापूर्वक 'कॉपी वर्क' किया और जिनको सफलतापूर्वक परीक्षा कक्ष में 'कॉपी वर्क' करने से रोक दिया गया। वे परीक्षा में असफल हो जाते हैं। यह वे बच्चे हैं जो कहीं से नक़ल करके 'कॉपी वर्क' कर लेते हैं लेकिन इन्होंने क्या लिखा है वे पढ़ नहीं पाते हैं। नहीं पढ़ पाने के कारण और लिखे हुए को समझ नहीं पाने के कारण वे उसे याद भी नहीं कर पाते हैं। परीक्षा के दिनों में वे कोशिश बहुत करते हैं लेकिन अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद वे असफल हो जाते हैं।

हालाँकि असफलता की पूरी ज़िम्मेदारी इन्हीं बच्चों के सिर मढ़ दी जाती है। लेकिन अगर हम ग़ौर करें तो हमें स्कूल की संस्कृति में एक अन्तर्निहित विरोधाभास देखने को मिलेगा। 'कॉपी वर्क' की संस्कृति के कारण कभी यह जानने की कोशिश नहीं की जाती है कि यह बच्चा जो कॉपी का काम पूरा करके लाया है क्या अपनी ही लिखी हुई बातों को वह पढ़ पाता है और अगर पढ़ पाता है तो क्या वह समझ पाता है? शिक्षकों के ऊपर भी दोष नहीं मढ़ा जा सकता है। मैं यहाँ स्कूल के अन्दर पढ़ने-लिखने की संस्कृति की बात कर रहा हूँ। जिस प्रकार शिक्षक पाठ्यक्रम में बँधे होते हैं उन्हें निर्धारित तारीख़ को एक पाठ ख़त्म कर दूसरे पाठ पर जाना होता है। शायद उनके पास इतना वक़्त नहीं होता है कि वे इन पहलुओं को देख पाएँ।

ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ समस्या को ही पहचाना गया है, इस कार्य के दौरान उम्मीद की कुछ किरणें भी नज़र आई हैं। मैंने ग़ौर किया है कि शुरुआत में बच्चे उन विषयों पर आसानी से लिख पाते हैं जहाँ किसी घटना का वर्णन करना होता है। इससे थोड़ी-सी ज़्यादा कठिनाई का सामना उन्हें करना होता है जब उन्हें अपने साथ बीती हुई किसी घटना के बारे में अपना अनुभव लिखना होता है। कठिनाई का स्तर तब बहुत हो जाता है जब किसी ऐसे मुद्दे पर उनसे लिखने के लिए कहा जाता है जिसके सम्बन्ध में उनका कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, बल्कि उन्होंने उसके बारे में किताब में पढ़ा है और शिक्षक से सुना है। मेरे ख़्याल से जब हम बच्चों को लिखकर अभिव्यक्त करना सिखा रहे हों तो हम इस क्रम को ध्यान में रख सकते हैं। इसपर विस्तार से चर्चा किसी और लेख में करेंगे।

उसी सवाल पर एक बार फिर से लौटते हैं जो हमने शुरू में उठाया था। 9वीं कक्षा में बड़ी संख्या में बच्चे अनुत्तीर्ण हो जाते हैं। आमतौर पर शिक्षक यह मानते हैं कि इसकी एक मुख्य वजह है कि बच्चे लिख नहीं पाते हैं। इस लेख में हमने देखा कि किस प्रकार स्कूल में पढ़ने-लिखने की संस्कृति के अन्दर ही एक अन्तर्निहित विरोधाभास है जहाँ हम बच्चों से परीक्षा के दौरान लिखने की उम्मीद करते हैं। लेकिन वे लिखें कैसे, इसको लेकर कोई ख़ास काम नहीं किया जाता है और इसकी एक मुख्य वजह 'कॉपी वर्क' की संस्कृति है। हमें इस संस्कृति को समझना होगा और इसमें व्यापक परिवर्तन लाना होगा। इसका विकल्प यह नहीं है कि बच्चे नोटबुक में काम नहीं करें। इसमें सिर्फ़ इतना परिवर्तन लाना होगा कि नोटबुक में बच्चे जो काम कर रहे हैं वह उनकी अभिव्यक्ति की जगह बने, जहाँ वे किसी प्रश्न के बारे में स्वतंत्र रूप से क्या सोचते हैं उसको लिखें। बच्चों में इस काम को बढ़ावा देने के लिए शिक्षकों को उनके द्वारा लिखे हुए लेखों को पढ़ना होता है और इस काम में वक़्त लगता है। स्कूल के अन्दर की हमारी पाठ्यचर्या में ऐसे सुधार की ज़रूरत है जो शिक्षकों को वक़्त दे कि वे हर बच्चे को स्वतंत्र लेखन के लिए प्रोत्साहित कर सकें और उचित सुझाव दे सकें।

मुरारी झा पिछले एक दशक से शिक्षा के मसलों पर अध्ययन एवं लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं। वर्तमान में दिल्ली के शासकीय विद्यालय में बतौर सामाजिक विज्ञान शिक्षक कार्यरत हैं।

सम्पर्क : murarijha1984@gmail.com